Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 9, June-2019, ISSN 2230-7540

तुलसीदास के काव्यों में लोकजीवन की अभिव्यक्ति

Dr. Chitra Yadav*

Assistant Professor, Department of Hindi, K. K. P. G. College, Etawah

सार – ***लोकजीवन की सार्थकता समाज के स्वस्थ विकास एवं मनोरंजन में है। परम्परा में निरंतर गतिमान लोकजीवन के तत्त्वों का विभाजन करना एक चुनौती पूर्ण कार्य है क्योंकि लोक जीवन के अन्तर्गत इतने अधिक तत्त्व हैं कि इन्हें कुछ ही बिन्दुओं में समेटना सहज नहीं है। फिर भी इसके तीन मुख्य तत्त्व बना सकते हैं - लोक-साहित्य, लोकानुभव (सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवेश), लोकाचार (नारी संस्कृति, रीति-रिवाज, विधि-विधान, लोक विश्वास। भक्तिकाल के कवियों की रचनाएं सहज, सरल तथा लोक-वाणी में है। गृहस्थ जीवन एवं उद्योग-धंधों से जुड़े होने पर भी इन भक्त कवियों की रचनाएं समाज में क्रांति लाने एवं विश्रृंखलित समाज को मार्गदर्शन देने में सक्षम थीं। तुलसीदास ने लोक मानस को व्यक्त करते हुए समाज में बिखरे लोक जीवन के तत्त्वों में अपने काव्य को संजोया है। लोक भूमि की गंध लिए तुलसीदास रचित काव्य जीवन से साक्षात्कार कराते हैं। इसी कारण तुलसी-साहित्य लोक साहित्य के निकष पर खरा उतरता है।***

कुंजीशब्द – ***लोकजीवन, सार्थकता समाज, तुलसी-साहित्य***

----------X----------

प्रस्तावना

लोकजीवन के विमर्श के आधार

लोक संस्कृति के लालित्य का सजीव रूप श्लोकजीवनश् है। 'लोक जीवन' आधुनिक काल में महत्वपूर्ण विमर्श का आधार रहा है, क्योंकि इसका सम्बंध संस्कृति एवं .. परम्परा से है। लोक रू अर्थ, स्वरूप एवं सार्थकता 'लोक' स्वयं एक संपूर्ण शब्द है। जब इसे किसी अन्य शब्द के साथ जोड़ा जाता है तब वह शब्द भी 'लोक' का चोला पहन लेता है और अपने वास्तविक अर्थ को अंशतः खो देता है। उदाहरण के लिए लोक कला, लोक चित्र, लोक नाट्य एवं लोक साहित्य आदि। जैसे 'लोक नाट्य' का अर्थ - नाट्य-कला की रीतियों से अनभिज्ञ सामान्य कलाकारों द्वारा नौटंकी प्रस्तुतिकरण है, जिसमें किसी प्रकार की 'ट्रेनिंग' की आवश्यकता नहीं होती है, जबकि केवल 'नाटक' का अर्थ है 'द्रश्य' काव्य या रूपक के दस भेदों में से एक जो प्रथम और सर्वप्रधान है। इस प्रकार 'लोक' से जुड़कर अन्य शब्द भी लोक की व्यापकता और अनगढ़ता को पा लेते हैं।

लोक शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ

'लोक' शब्द के व्युत्पत्तिमूलक अर्थ के सम्बंध में पं. विद्यानिवास मिश्र ने कहा है कि यह शब्द "रुचध्लुच से है, जिसका अर्थ प्रकाशित होना है और प्रकाशित करना भी है, जो सामने प्रकाशित दिख रहा है और जो प्रकाशित कर रहा है।"

जे.गोंडा ने 'लोक' शब्द से बने "रोकाध्लोको का अर्थ प्रकाश, दीप्त, चमकीला" बताया है।

संस्कृत शब्द कोश के अनुसार 'लोक' शब्द की उत्पत्ति "लोक में घञ् प्रत्यय लगाने से हुई है, जिसका एक अर्थ प्रकाश भी है।" इस प्रकार लोक का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ प्रकाश अथवा आभा है, जिसे इंद्रियों से महसूस किया जा सकता है

परम्परा के प्रवाह में 'लोक' का प्रयोग

'लोक' शब्द का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना मनुष्य जाति का इतिहास। प्राचीन काल से ही 'लोक' को साहित्य में स्थान मिल गया था, जिसका प्रमाण है विश्व के प्राचीनतम धर्मग्रंथों एवं शास्त्रों में 'लोक' शब्द का प्रयोग।

ऋग्वेद में 'लोक' का अर्थ 'स्थान' अथवा 'संसार' के अर्थ में लिया गया है

www.ignited.in

"सखे विष्णो वितरं विक्रमस्व चोर्देहि लोक वर्जाय विष्कमे।।[2]

अर्थात हे सखा विष्णुदेव !

आप अत्यधिक पराक्रम प्रकट करें। हे द्युलोक ! आप हमारे वज के गमन के लिए विस्तृत स्थान प्रदान करें।"

नाट्यशास्त्र में लो' का अर्थ संसार से लिया गया है:

'लोके गुणातिरिकानां गुणानां यत्र नामभिः।

एको हि शब्द्यते तन्तु विज्ञेयं गुणकीर्तनम !!

अर्थात् जब संसार में उपलब्ध होने वाले सारे गुणों की संख्या और स्थिति से अधिक गुण एक व्यक्ति में बतलाये जाएं तो उसे श्गुणकीर्तनश् समझना चाहिए।श्

मनुस्मृति में तीन प्रकार के लोकों का वर्णन मिलता है -

'त एव हि त्रयो लोकांस्त एव त्रय आश्रमाः ।

त एव हि त्रयो वेदास्त एवोकास्त्रयोऽ ग्रयः ।।

अर्थात् तीन लोक एवं तीन आश्रम हैं।

लोक का कोशगत अर्थ

शब्दकोशों में भी लोक के विभिन्न अर्थ मिलते हैं। तुलसी शब्द कोश में 'लोक' का अर्थ 'द्रश्यमान जगत एवं लोग' से लिया गया है।

वहीं 'बृहत् हिन्दी कोश' के अनुसार 'लोक' का अर्थ "संसार, भुवन, समूह, भू-भाग, प्रांत, निवास स्थान, सांसारिक व्यवहार, दृश्य, मानवजाति, 7 या 14 की संख्या तथा यश से है।"

हिन्दी के अन्य शब्दकोशों में भी 'लोक' के यही अर्थ मिलते हैं। 'समांतर कोश' में 'लोक' "जाति, कबीला, क्षेत्र, जनता, जीव-जगत, समाज" के अर्थ में लिया गया है। पौराणिक कोश में विभिन्न लोकों की पौराणिक मिथकों के आधार पर चर्चा की गई है। उदाहरण के लिए

"उपनिषदों के अनुसार इहलोक" और 'परलोक ये दो ही लोक हैं। भूः, भुवः स्वः, महः जनः, तपः और सत्यम! ये सब सप्त 'व्याहृतियां' कहलाती हैं। पौराणिक काल में सात पाताल मिलाकर ये कुल चैदह लोक बने। भूः से भूलोक, भुवः से भुवर्लोक, स्वः से स्वर्गलोक। ऐसे ही सातों लोकों के नाम पड़े। अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल। पद्मपुराणानुसार ये सात पातालों के नाम हैं। इस प्रकार सब मिलाकर चौदह लोक हुए। निरुक्त में पृथ्वी, अंतरिक्ष और धुलोक ये तीन लोक हैं। भूः, भुवः और स्वः इन्हीं का दूसरा नाम है। ये 'महाकाव्याहृति' कहलाते हैं।

सुश्रुत में केवल दो लोक हैं- स्थावर एवं जंगम

इस प्रकार 'लोक' का अर्थ मिथकों एवं पुराणों में व्यापक एवं काल्पनिक है किन्तु साधारणतया इसे 'लोग' एवं 'स्थान' के अर्थ में ही समझा जाता है।

लोक शब्द की व्याख्या

'लोक' शब्द का प्रयोग जितना प्राचीन है उसका अध्ययन उतना ही नवीन । "अंग्रेजी के फोक (थ्वसा) शब्द का प्रयोग विभिन्न अकादेमियों द्वारा डेढ़-सौ वर्षों से अधिक समय से होता चला आया है।"

'फ़ोक' शब्द समाज के उस समूह को कहा जाता है जिसके सदस्यों की एक जैसी संस्कृति होती है। इसी कारण वे सब आम-जन अर्थात् एक जैसे लोगों के रूप में जाने जाते हैं।

हिन्दी साहित्य में 'लोक' का प्रयोग अपेक्षाकृत नया है और इसे हिन्दी साहित्य में प्रथम बार प्रयोग करने का श्रेय पं. रामनरेश त्रिपाठी को जाता है। 15 उन्होंने 'ग्राम साहित्य' (1951 में प्रकाशित) के अन्तर्गत लोकगीतों का संकलन प्रस्तुत किया, जिसे उन्होंने लोक-गीतों की बजाए 'ग्राम-गीत' कहना उचित ठहराया, क्योंकि इन गीतों का जन्म गांवों में होता है। उनके इस मत का खंडन बाद के लगभग सभी लोक-साहित्य के अध्येताओं ने किया है" क्योंकि 'लोक' को श्ग्रामय तक ही सीमित नहीं किया जा सकता।

डॉ. सत्येन्द्र ने लोक-साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने अन्य लोक साहित्य के विद्वानों को लोक साहित्य में कार्य करने की ओर प्रेरित करते हुए लोक-साहित्य के संकलन एवं अध्ययन की वैज्ञानिक "मैथोडोलॉजी" भी समझाई है।

'देवेन्द्र सत्यार्थी' ने अथक परिश्रम से दूर-दराज के विभिन्न क्षेत्रों में जाकर लोक-साहित्य का संकलन एवं विश्लेषण किया है, जिससे लोक-साहित्य के अध्ययन को बहुत प्रोत्साहन मिला है।

www.ignited.in

हिन्दी तथा अंग्रेजी के लोक साहित्य के अध्येताओं ने 'लोक' के स्वरूप पर विचार करते हुए इसे विभिन्न रूपों में परिभाषित किया है।

(क) डॉ. सत्येन्द्र, ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन, परिचय (धीरेन्द्र वर्मा) डा. श्याम परमार के अनुसार, 'लोक' साधारण जन समाज है, जिसमें भू-भाग पर फैले हुए समस्त प्रकार के मानव सम्मिलित हैं। यह शब्द वर्ग-भेद रहित, व्यापक एवं प्राचीन परम्पराओं की श्रेष्ठ राशि सहित अर्वाचीन सभ्यता, संस्कृति के कल्याणमय विकास का द्योतक है।"[17]

डॉ. श्याम परमार ने 'लोक' के अन्तर्गत सभी लोगों को सम्मिलित किया है। डॉ. सत्येन्द्र ने अहंकार, शास्त्रीय ज्ञान एवं बुर्जुआ संस्कारों में पगे वर्ग को लोक से निष्काषित करते हुए लिखा है, 'लोक' मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीय और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्त्व मिलते हैं वे लोकतत्त्व कहलाते हैं।

'लोक साहित्य की भूमिका' पुस्तक में डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने भी डा. सत्येन्द्र की भांति लोक को पुस्तकीय ज्ञान के प्रभाव से परे बताते हुए कहा है कि "जो लोग संस्कृत तथा परिष्कृत लोगों के प्रभाव से बाहर रहते हुए अपनी पुरातन स्थिति में वर्तमान हैं उन्हें 'लोक' की संज्ञा प्राप्त है।"[19] इस दृष्टि से डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'लोक' का स्वरूप अधिक स्पष्ट प्रतीत होता है, जिन्होंने नगर एवं ग्राम के समस्त लोगों को 'लोक' के अन्तर्गत रखते हुए कहा है कि " 'लोक' शब्द का अर्थ 'जनपद' या 'ग्राम्य' नहीं है बल्कि नगरों और गांवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचिसम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं, और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएं आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं।

ईश्वर शरण पाण्डेय ने भी डा. द्विवेदी के समान श्रमिक समुदायों को 'लोक' के अर्थ में लेते हुए कहा है कि "इतिहास का आधार भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली वस्तुओं का उत्पादन है और इतिहास निर्माण में निर्णायक भूमिका उन लोगों की है, जो भौतिक सम्पदाओं का उत्पादन करते हैं। और वे कौन हैं ? मेहनतकश जनसमुदाय, 'लोक' शब्द से मैं इसी अर्थ को अभिहित करता हूँ।"

'लोक' का यह स्वरूप उपयुक्त तो लगता है किन्तु संपूर्ण नहीं। 'लोक' के स्वरूप को अधिक विस्तार देते हुए पं. विद्यानिवास मिश्र ने इसमें मनुष्य के साथ प्रकृति को भी जोड़ते हुए कहा है कि " 'लोक' का अर्थ है इंद्रियगोचर संसार, जो इंद्रियों द्वारा अनुभूत होता हो, जिसका प्रत्यक्ष अनुभव होता हो। इस लोक में केवल मानव समाज ही नहीं रहताय प्रकृति भी आती है, व्यवहार भी आता है, भाषा भी आती है।

कैलिफोर्निया के लोक साहित्यवेत्ता प्रोफेसर 'एलेन डंडेसश् ने 'लोक' की व्याख्या करते हुए कहा है -

ष्मनुष्य का एक ऐसा समूह जिसमें कोई न कोई समानता हो, यह महत्वपूर्ण नहीं है कि उस समूह के एक दूसरे से जुड़ने का वह आधार क्या है या दूसरे समूहों से उनके भिन्न होने का आधार क्या है ? यह समान आधार व्यवसाय, भाषा या धर्म कुछ भी हो सकता है। महत्वपूर्ण यह है कि उस समूह की अपनी निजी परम्पराएं होनी चाहिएं।

इस प्रकार यदि भारतीय विचारकों के 'लोक' विषयक भावों को संकलित किया जाए तो लोक का स्वरूप सहज, अनगढ़, अकृत्रिम, परम्परागत एवं शास्त्रीय ज्ञान से रहित होगा, किन्तु इसे पूर्णतः उचित नहीं ठहराया जा सकता।

'लोक' शहरी एवं ग्रामीण दोनों वातावरण में पनप सकता है। 'लोक' के अभाव में जीवन कठिन एवं नीरस है। दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता, चेन्नई जैसे महानगरों की अपनी लोक-संस्कृति है। डॉ. जयनारायण कौशिक ने दिल्ली की लोक-परम्परा एवं संस्कृति का वर्णन अपनी पुस्तक 'दिल्ली अंचल की लोक-संस्कृति' में दिखाया है।

लोक का स्वरूप समय-समय पर परिवर्तित होता रहा है। आज 'लोक' का जो स्वरूप है वह पहले से भिन्न है। पहले लोक का अर्थ पिछड़ेपन, गंवार एवं अशिक्षित लोगों से ही लिया जाता था। 'लोक' के इस स्वरूप को यदि तुलसी-युग के संदर्भ में देखा जाए तो अधिक सटीक होगा, क्योंकि उस युग में अशिक्षित-शिक्षित, गंवार-सभ्य के मध्य एक गहरी खाई थी, जिसे पाटना कठिन था। शिक्षित लोग नगरीय जीवन व्यतीत करते थे एवं शिष्ट भाषा का ही प्रयोग करते थे। शिक्षा पर कुछ ही वर्गों का वर्चस्व था, जो अपने को उत्कृष्ट दिखाने के लिए लोक-भाषा का प्रयोग नहीं करते थे। तुलसीदास ने स्वयं संस्कृत के स्थान पर भाषा में लिखने का जो साहसिक कदम उठाया उसके लिए उन्हें कई प्रताड़नाएं सहनी पड़ी।

www.ignited.in

'लोक' पर समुचित विचार करने के उपरांत 'लोक' का जो स्वरूप उभरता है वह किसी भी समाज में मनुष्यों का वह समूह है जो किसी विचार पर एकमत हो। वही विचार अथवा दृष्टिकोण उस समूह को आपस में जोड़ता है और उसकी समृद्धि में योगदान देता है। इस समूह के लोगों का धर्म, क्षेत्र, व्यवसाय, जीवन-स्तर भिन्न भी हो सकता है और एक भी।।

'लोक' की सार्थकता आनन्द में है। इसे पैसा कमाने का जरिया नहीं बनाया जा सकता, अन्यथा यह नष्ट हो जायेगी। आधुनिक युग में लेखकों एवं विद्वानों ने लोकगीतों एवं नृत्यों आदि के धीरे-धीरे समाप्त होने का श्रेय शहरों एवं पश्चिमी संस्कृति को दिया है, परन्तु अधिकतर उन्होंने 'लोक' को गांव का पर्याय बनाकर देखा है। गांवों में औद्योगीकरण के बढ़ते कदमों ने अपना वर्चस्व जमाया है तथा हलों की जगह ट्रैक्टरों ने ले ली है। कटाई-सिंचाई को अब हाथों से नहीं बल्कि मशीनों से किया जा सकता है। गांवों में हुई मशीनी उन्नति के कारण अब वहां भी लोगों के मनोरंजन का साधन टेलीविजन, रेडियो हो गया है। यह विकास की सहज प्रक्रिया है। भारत में मशीनों एवं कारखानों का उपयोग होना उतना ही स्वाभाविक है, जितना पढ़ाई के बाद नौकरी करना। इसमें भला पश्चिमी अथवा शहरी संस्कृति क्या कर सकती है?

दया प्रकाश सिन्हा ने 'लोकतरंग: उत्तर प्रदेश' नामक पुस्तक में बताया है कि गणतंत्र दिवस के अवसर पर, एक प्रदेश की जनजाति के एक ही लोक-नर्तक समूह को एक ठेकेदार के प्रयास से लगातार पैंतीस सालों से भाग लेने का अवसर मिलता रहा है। इससे रुष्ट होकर उस क्षेत्र के अन्य सभी गांवों ने नृत्य की इस परम्परा को बंद ही कर दिया।

इस घटना से यह भी पता चलता है कि लोक-कलाकार जो 'स्वांतः सुखाय बहुजन हितायश् के भाव लेकर मनोरंजन की दृष्टि से ही नृत्य एवं गीतों को गाया करते थे, उनमें ये भाव लुप्त हो गये हैं। इसका स्थान राग-द्वेष, धन एवं प्रसिद्धि ने ले लिया है। इन लोक-कलाकारों को क्या स्वयं के लिए एवं आने वाली पीढ़ियों के लिए इसे जिंदा रखने की आवश्यकता महसूस नहीं होती?

'लोक' का अर्थ समूह से है, जिसमें कोई अकेला नहीं है किसी न किसी भाव से वे एक-दूसरे से जुड़े हैं, जो उस समूह को सुरक्षा, आनन्द एवं विकास की ओर अग्रसर करता है।

लोक की सार्थकता

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आरम्भ से ही लौकिक साहित्य को जितना स्थान मिला है उतना उसके समांतर चल रहे संस्कृत एवं शिष्ट साहित्य को नहीं मिला है।

अमीर खुसरो की पहेलियां हों या कबीर, सूर, तुलसी के दोहे, लोक जीवन से जुड़े होने के कारण लोक में बहुत महत्वपूर्ण हैं।

अनुभव के संबल पर टिका भारतीय लोकजीवन परिपक्व एवं आत्मनिर्भर है, चाहे वह कृषि सम्बंधी ज्ञान हो अथवा चिकित्सा सम्बंधी।

भारतीय लोकजीवन में अनुभव के आधार पर सभी कुछ मौजूद है। इस कारण अशिक्षित लोगों को भी किताबी शिक्षा के अभाव में 'गंवार' या 'अनपढ' नहीं अपितु गरिष्ठ परम्परा एवं अनुभव के आधार पर 'Intellectual' माना जाना चाहिए, क्योंकि उनके जीवन का आधार एक बहुत बड़े लोक समूह के अनुभव के आधार पर चली आती हुई परम्परा है।

भक्तिकालीन आन्दोलन के अन्तर्गत देखें तो दरबारी कवियों की अपेक्षा सामान्य जन ने ही कविताएं लिखीं, जिनमें सूफी-संत से लेकर जुलाहे, चर्मकार, कसाई, धुनिया भी थे। इसका अर्थ है कि ये पेशे से कवि नहीं थे। ये तो समाज में विभिन्न व्यवसायों से जुड़े हुए थे। कविता 'बाई प्रोडक्ट' बन गई, जिसे किसी राजा-सामंत को रिझाने के लिए काव्य-सौन्दर्य, अलंकार, परिष्कृत भाषा आदि की आवश्यकता नहीं थी। यह 'तेरी-मेरी उसकी बात' थी, जो सीधे लोक-हृदय से निकल कर लोक-हृदय की बात करती थी। इसमें किसी लाग-लपेट की आवश्यकता ही नहीं थी। ये काव्य ही दस्तावेज हैं उस काल के लोक जीवन को जानने का, उनकी सोच, रहन-सहन, खान-पान, सामाजिक संघर्ष आदि से परिचित होने का।

लोक जीवन के तत्त्व लोक शब्द के साथ साहित्य, संस्कृति, मानस, मनोवृत्ति, परम्परा, वार्ता आदि शब्दों को जोड़कर अध्ययन करने की परम्परा भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य-जगत में प्रचलित है।

फोक (थ्वसा) शब्द की उत्पत्ति थ्वसब से हुई है। यह ऐंग्लो सेक्शन शब्द है, जो जर्मनी में टवसा के रूप में प्रचलित है। आंग्लभाषी प्रयोग की दृष्टि से 'फोक (थ्वसा) असंस्कृत और मूढ़ समाज अथवा जाति का द्योतक है।

www.ignited.in

इस परिभाषा के अनुसार 'लोकजीवन' का अर्थ हुआ असंस्कृत लोगों का जीवन, जोकि आज के संदर्भ में उचित नहीं है।

'लोक साहित्य' (Folk Literature) 'लोककसंस्कृति' (Folk Culture) 'लोक जीवन' (विसासपमि) 'लोकवार्ता (Folklore) एवं 'लोक मानस' आदि शब्दों में अनेक समानताएं हैं किन्तु फिर भी इनका प्रयोग एक-दूसरे के स्थान पर नहीं होता। उदाहरण के लिए 'लोक मानस' के विषय में डॉ. सत्येन्द्र का विचार है कि यह मानव के मन की वह स्थिति है, जो उसे उत्तराधिकार या जातीय आधार पर नहीं मिली बल्कि- "मानव ने जन्म लेते ही अपनी आदिम अवस्था में जो मानसिक उपलब्धियाँ प्राप्त की, वे उसकी सहज मानवीय प्रकृति बन गयीं। वे ही निरन्तर मानस की परम्परा में मानव को मानव बनाने के लिए सूत्र रूप में उत्तराधिकरण के रूप में, युग-युग में मानव में अवतरित होती चली जाती हैं।"

इस प्रकार डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार 'लोक मानस' मानव के जन्म के समय विद्यमान सहज प्रतिक्रियाओं का प्रतिफल है।

नृशास्त्री (Anthropologist) लोक संस्कृति (Folk Culture) के अन्तर्गत अध्ययन करते हुए समाज, परिवार, आचार-विचार, खान-पान को अपने शोध का विषय बनाते हैं। वहीं लोक साहित्यविद् (Folklorist) लोक वार्ता (Folk Lore) का अध्ययन करते हुए रहन-सहन, रीति-रिवाज, कला आदि मानव जीवन से जुड़े सभी कार्यकलापों को अपने शोध में सम्मिलित करते हैं। इस प्रकार नृशास्त्रियों और लोकसाहित्यवेत्ताओं का कार्यक्षेत्र एक ही है, केवल नजरिया भिन्न-भिन्न होता है।

'फ़ोकलोर' शब्द का प्रयोग पहली बार 'ब्रिटिश पुरातत्ववेत्ता विलियम जॉन थाम्स ने सन् 1846 में पॉपुलर एन्टीक्यूटीज' के लिए किया। 25 "इसके पहले इस शब्द के लिए लोकप्रिय पुरातत्त्व सामग्री (Popular Antiquities) अथवा लोकप्रिय साहित्य (Popular Literature) शब्दों का प्रयोग किया जाता था।

विलियम जॉन थॉम्स ने 'फ़ोकलोर' के अन्तर्गत शीति रिवाज, विश्वास, कहानियों आदि को सम्मिलित किया जो समाज के गरीब और पुराने जमाने के लोगों में प्रचलित थे। इसे उनके समुदाय की धरोहर के रूप में पेश किया जा सकता है।"

जॉन थॉम्स ने 'फ़ोकलोर' के अन्तर्गत गरीब और पुराने जमाने के लोगों को स्थान दिया। इसी कड़ी को आगे बढ़ाते हुए लोकजीवन (थ्वसा स्पमि) का अध्ययन भी गरीब और कृषक समुदाय से आरंभ हुआ। इसे इस प्रकार समझा जा सकता है - "अंग्रेजी शब्द 'थ्वसा स्पमि' स्वीडिश शब्द 'थ्वसापअम' से बना है, जिसमें आम लोगों को, और विशेष रूप से कृषक वर्गों के जीवन को अध्ययन का विषय बनाया गया।"

"अमेरिका में लोकजीवन के अध्ययन के अन्तर्गत अमेरिकी संस्कृति को भली-भांति समझने लिए लोकसंस्कृति और परिस्थितियों को केन्द्र माना जाता है।"

डॉ. सत्येन्द्र ने फोकलोर को 'लोकवार्ता' का नाम दिया है। उनके अनुसार 'लोकवार्ता (फोकलोर) 'लोकसंगीत' (फोकम्यूजिक) आदि में इसका अर्थ संकुचित होकर केवल उन्हीं का ज्ञान कराता है जो नागरिक संस्कृति और संविधि शिक्षा की धाराओं से मुख्यतः परे हैं, जो निरक्षर भट्टाचार्य हैं अथवा जिन्हें मामूली-सा अक्षर ज्ञान है-ग्रामीण और गॅवार।

रवीन्द्र भ्रमर ने भी फोकलोर को 'लोकवार्ता' का पर्याय मानते हुए कहा है कि 'लोकवार्ता' का शाब्दिक प्रयोग हिन्दी के लिए अब नया नहीं रहा। इसका प्रचलन अंग्रेजी के 'फ़ोकलोर' के लिए पर्यायवाची शब्द के रूप में हुआ है।[31]

जहाँ डॉ. सत्येन्द्र और रवीन्द्र भ्रमर ने फोकलोर को 'लोकवार्ता' का पर्याय माना है, वहीं डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी और डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने 'फ़ोकलोर' को 'लोक संस्कृति के समकक्ष बताया है।

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने 'फ़ोकलोर' के अंतर्गत लोकजीवन के सभी विषयों को सम्मिलित करते हुए कहा है, 'लोक संस्कृति के अन्तर्गत जन-जीवन से सम्बंधित जितने आचार-विचार, विधि-निषेध, विश्वास, प्रथा, परम्परा, धर्म, मूढाग्रह, अनुष्ठान आदि हैं, वे सभी आते हैं।[32]

इसलिए 'लोकसंस्कृति' को 'लोकजीवन' के समीप माना जाता है। आधुनिक लोकजीवन के अध्ययन की रीति के विषय में 'फ़ोकलोर: एनसाइक्लोपीडिया' में बताया गया है कि 'समकालीन लोक साहित्य-वेत्ता 'लोकजीवन एवं 'फ़ोकलोर' का अध्ययन करते हुए एक ही रीति से लोक का विवरण, विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं तथा छोटे-छोटे समूहों में बंटी हुई लोकसंस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए अपने अध्ययन में इन समूहों में पाई जाने वाली विभिन्न पारम्परिक संस्कृतियों को भी सम्मिलित करते हैं।"[33]

अध्ययन के उदेश्य

1. लोकजीवन के विमर्श के आधार का अध्ययन
2. लोक शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ का अध्ययन

www.ignited.in

उपसंहार

'लोक' का इतिहास वेदों से भी प्राचीन है अर्थात् लोकजीवन का सम्बंध मानव के इतिहास के साथ ही जुड़ा हुआ है। लोक मानस को अभिव्यक्ति देने वाला लोकजीवन सजीव एवं विस्तृत है। 'लोक' शब्द जितना प्राचीन है उसका अध्ययन उतना ही नवीन। उसे 'ग्राम' 'जनता' आदि शब्दों का पर्याय भी माना गया, किन्तु इसका सम्बंध ग्राम तक ही सीमित न होकर बड़े भू-भाग तक फैले हुए मानव-समाज तक है। इस प्रकार आज 'लोक' शब्द 'असभ्य' 'अशिक्षित' एवं 'मूढ़ समाज' का द्योतक न होकर जीवंत संस्कृति एवं परम्परा का परिचायक है, जो किसी न किसी रूप में एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं और उस जुड़ाव की एक सांस्कृतिक परम्परा है, जो उस लोक समूह की पहचान है। लोक के साथ साहित्य, संस्कृति, मानस, मनोवृत्ति, परम्परा, वार्ता, कलाएं, भाषा आदि शब्दों को जोड़कर अध्ययन करने की परम्परा है किन्तु इन सभी शब्दों के अर्थ एक-दूसरे से भिन्न हैं। लोक का स्वरूप मुख्य रूप से मौखिक ही है किन्तु लोकजीवन में कुछ कलाएं ऐसी हैं, जिन्हें देखकर या अनुकरण करके ही परम्परा से सीखा जा सकता है। जैसे लोकनृत्य, लोकशिल्प आदि। इसके साथ ही आज लिखित लोक साहित्य का महत्व है। लोक तत्त्वों के विश्लेषण से समाज का समाजशास्त्रीय एवं भाषा वैज्ञानिक विश्लेषण संभव है अतः यह संस्कृति एवं परम्परा की धरोहर होने के साथ ही ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. अरूणप्रकाश मिश्र तुलसी का मानववाद, अंकुर प्रकाशन दिल्ली 1987
2. अम्बाप्रसाद सुमन रामचरितमानस भाषा रहस्य, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, संस्करण 2000
3. आशा देवी हिंदी प्रेमाख्यानों में लोक संस्कृति, अविराम प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2003
4. आशा भारती हिंदी रामकाव्य परम्परा और भरत, शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1981
5. इंद्रनाथ मदान (सं) तुलसीदास रू चिंतन और कला, राजपाल एंड संस, दिल्ली, संस्करण 1964
6. इंद्रनाथ मदान (सं) तुलसीदास प्रतिभा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 1971
7. इरफान हबीब अकबर और तत्कलीन भारत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2005
8. उदयभानु सिंह (सं तुलसी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली 1965
9. उदयभानु सिंह तुलसी काव्य-मीमांसा, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 2002, 1966
10. उदयभानु सिंह तुलसी दर्शन मीमांसा, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, संस्करण 1961
11. उमेश जोशी भारतीय संगीत का इतिहास, मानसरोवर प्रकाशन महल, उ.प्र. 1957
12. एस.टी. नरसिंहचारी सौंदर्य तत्त्व निरूपण, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 1977
13. ओंकार शरद सं निराला ग्रंथावली 2, प्रकाशन केंद्र, लखनऊ 1973
14. ओमप्रकाश सिंह सं आचार्य रामचंद्र शुक्ल ग्रंथावली 5, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली 2007
15. कमलेश्वर भट्ट तुलसीदास की तद्भव शब्दावली, शोध प्रबंध प्रकाशन, दिल्ली 1978

Corresponding Author

Dr. Chitra Yadav*

Assistant Professor, Department of Hindi, K. K. P. G. College, Etawah

www.ignited.in